सूर के काव्यों में वात्सल्य रस

नेहा शर्मा
जयपुर

अष्टछाप के कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि है। इनका जन्म 1483 ई. के आसपास माना जाता है। सूरदास के विषय में सर्वप्रसिद्ध कथन है कि वे जन्मांध थे। सूरदास वात्सल्य और शृङ्गार के कवि हैं। भारतीय साहित्य क्या, सम्भवतः विश्व साहित्य में कोई कवि वात्सल्य के क्षेत्र में उनके समकक्ष नहीं हैं। सूर की बाल-लीला वर्णन अपनी सहजता, मनोवैज्ञानिकता एवं स्वाभाविकता में अद्वितीय है। उनका काव्य बाल-चेष्टाओं के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का भण्डार है।

भक्ति ने भगवान का मानवीकरण कर दिया था। सूर के कृष्ण सामान्य गृहस्थ के बालक बन गए हैं, जो हठ करके आँगन में लोटने लगते हैं - **'काहे को आरि करत मेरे मोहन। यों तुम आँगन लेटी।'** यशोदा दही मथ रही थी। कृष्ण हठ करने लगे। आकर आँचल पकड़ लिया। दही भूमि पर ढुलक गया। कृष्ण सीख रहे हैं। पैर डगमगाते हैं। यशोदा हाथ पकड़कर उन्हें चलना सिखाती है - **'सिखवत चलन जशोदा मैया, अरबराय करि पानि गहावति डगमगात धरै पैयाँ।'** [1]

सूरदास ब्रजभाषा के प्रथम एवं सशक्त कवि माने जाते हैं परन्तु उनकी रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की शृङ्गार और वात्सल्य सम्बन्धी उक्तियाँ सूरदास की झूठी-सी जान पड़ती है। शृङ्गार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक सूरदास की दृष्टि पहुँची वहाँ तक और किसी कवि की नहीं है, इसलिए सूरदास को वात्सल्य और शृङ्गार रस का सम्राट् कहा जाता है।

बालचेष्टाओं की ऐसी स्वाभाविक एवं मनोरम झांकी अन्यत्र नहीं मिलती। सूर की भक्ति पद्धति में जो माधुर्य भाव मिलता है वह मुख्य रूप से लीलाओं पर आधारित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार - 'जैसे रामचरित गान करने वाले भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार, कृष्णचरित गान करने वाले भक्त कवियों में महात्मा सूरदास जी का' वास्तव में ये हिन्दी काव्य गगन के सूर्य और चन्द्र हैं।[2]

वात्सल्य वर्णन के क्षेत्र में विश्व भर में सूर के समक्ष आने वाला एक भी कवि नहीं है। सूर ने बाल कृष्ण के जन्म से लेकर, उसके नामकरण, उसकी बाल सुलभ चेष्टाओं, लीलाओं, जैसे माखन दधि खाना, आँगन में स्तम्भ में अपने ही प्रतिबिम्ब को माखन खिलाना, घुटनों के बल चलना, छोटे-छोटे दो दांतों को निकालकर खिलखिलाकर हंसना, धीरे-

धीरे पैदल चलना, नाचना, बाल हठ- करना, कभी चाँद को रोटी समझकर मांगना तो कभी नई बहुरिया मांगना, दाऊ से बाल सुलभ वैर भाव रखना आदि अनेकों ऐसे चित्र खींचे हैं जो सम्पूर्ण विश्व साहित्य में अद्वितीय है। सूर ने पुत्र के साथ ही पुत्री के प्रति वात्सल्य भाव के भी अनेकों जीवन्त चित्रों की सृजना की है।

वात्सल्य रस का शास्त्रीय स्वरूप – भक्तों के लिए 'वात्सल्य' भक्ति का एक अँग है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से वात्सल्य रस का जो स्वरूप है, वही वात्सल्य भक्तिरस में स्वीकृत है। आचार्य विश्वनाथ अपने अलंकार ग्रन्थ में वात्सल्य का स्वरूप लिखते हैं -

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम्।।[3]

वात्सल्य का स्थायी भाव – रसानुभूति के मूल में स्थायी भाव माना जाता है। वात्सल्य रस का स्थायी भाव वत्सल, वत्सलता या वात्सल्य माना जाता है। कुछ लोगों ने वात्सल्य-रस का स्थायी भाव पुत्रादि विषयक रति, कारुण्य या ममकार माना है।[4]

वात्सल्य के भेद – आलम्बन के स्थिति भेद वात्सल्य रस के दो भेद माने जाते हैं - संयोग वात्सल्य तथा वियोग वात्सल्य।

वात्सल्य भक्तिरस – वात्सल्य रस का यह विवरण वात्सल्य भक्तिरस पर भी लागू हो जाता है। भगवान के बालरूप के प्रति वात्सल्य भाव ही विभाव, अनुभाव आदि के द्वारा व्यक्त होकर वात्सल्यरस का रूप ग्रहण करता है। इसमें शैशव से लेकर किशोर अवस्था तक की स्थिति होती है।

वात्सल्य और शृङ्गार के क्षेत्र में जितना उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया है, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का वे कोना-कोना झाँक आए।[5]

'यशोदा के वात्सल्य में वह सब कुछ है जो 'माता' शब्द को इतना महिमाशाली बनाए है।'[6]

वात्सल्य की धारा सूर के काव्य में अनवरत चलती रहती है। कृष्ण के यशोदा तक पहुँचते ही यशोदा की वात्सल्यभाव सीमा तोड़कर प्रवाहित हो गया। कृष्ण की छोटी-छोटी क्रीड़ाओं का यशोदा द्वारा अवलोकन तथा उससे आनन्द प्राप्ति करने का एक उदाहरण -

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।

हलरावै दुलरावै मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै।

मेरे लाल कौं आउ निँदरिया काहें न आनि सुलावै।

तु काहें नहिं बेगहिं आवै तोकौं कान्ह बुलावै।

कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुं अधर फरकावैं।

सोबत जानि मौन ह्वै कै रहि करि करि सैन बतावै।

इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरैं गावै।

जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ सो नन्द भामिनि पावै।। [7]

वात्सल्य का यह दृश्य प्रत्येक भारतीय घर का साझा दृश्य है जहाँ लोरी सुनाती हुई माताएँ अपने पुत्रों को सुलाती हैं और गाना बंद करते ही 'इहि अंतर अमुल उठे हरि जसुमति मधुरै गावै' का दृश्य आम है।

छोटे बालकों को देखकर माताओं की यह सहज इच्छा होती है कि कब उनका लाल उठकर दौड़ेगा और कब उनको माता कह कर पुकारेगा। यशोदा की इच्छा भी इससे पृथक् नहीं -

हौं बलि जाउँ छबीले लाल की।

धूसर धूरि घुटुरुवनि रेंगनि बोलनि बचन रसाल की।

छिटकि रही चहुँ दिसि जु लटुरियाँ लटकन लटकनि भाल की।

मोतिनि सहित नासिका नथुनी कंठ कमल दल भाल की।

कछुक हाथ कछु मुख माखन लै चित्तवनि नैन बिसाल की।

सूरदास प्रभु प्रेम मगन भई ढिग न तजनि ब्रजबाल की।। [8]

आचार्य शुक्ल ने सही लक्ष्य किया है कि वात्सल्य वर्णन में सूर तुलसी से आगे हैं। सूर की भक्ति है तो सख्य भाव की पर बाल्यावस्था के वर्णन में जब वात्सल्य रस का प्रवाह होता है तब सखा और सख्य का भाव तिरोहित हो जाता है। ऐसी सूक्ष्मता तभी सम्भव है जब अनुभूति और अभिव्यक्ति एकमेव होकर सामने आती है माता के पास कृष्ण काफी शिकायतें करते हैं। माता उन शिकायतों को सुनकर हँसती है -

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।

मोसों कहत मोल को लीन्हों तू जसुमति कब जायो।

कहा करौं इहि रिस के मारें खेलन हौं नहिं जात।

पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तेरो तात।

गोरो नन्द जसोदा गोरी तू कत स्यामल गात। [9]

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।

किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।

तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वैहै लांबी मोटी।

काढ़त गुहत न्हबावत जेहै नागिन सी भुइँ लोटी।[10]

इसी तरह सूरदास भगवान श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का अभिव्यक्त करते हैं कहते हैं। कान्हा अपनी शिकायत की सफाई देते हुए माता जसोदा से कह रहे हैं कि -

तेरी सौं सुनु सुनु मेरी मैया।

आवत उबटि परयो ता ऊपर मारन कों दौरी इस गैया।

ब्यानी गाइ बछरुवा चाटति हौं पय पियत पतूखिनि लैया।

यहै देखि मोकों बिजुकानि भाजि चल्यो कहि दैया दैया।[11]

सूरकाव्य का मुख्य विषय कृष्णभक्ति है। 'भागवत' पुराण को उपजीव्य मानकर उन्होंने राधा-कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन 'सूरसागर' में किया है। सूर के भाव-चित्रण में वात्सल्य-भाव को श्रेष्ठतम कहा जाता है। बाल-भाव और वात्सल्य से सने मातृहृदय के प्रेम-भावों के चित्रण में सूर अपना सानी नहीं रखते। बालक की विविध चेष्टाओं और विनोदों के क्रीड़ास्थल मातृहृदय की अभिलाषाओं, उत्कण्ठाओं और भावनाओं के वर्णन में सूरदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि ठहरते हैं। वात्सल्य-भाव के पदों की विशेषता यह है कि उनको पढ़कर पाठक जीवन की नीरस और जटिल समस्याओं को भूलकर उनमें मग्न हो जाता है।

सूर की भक्ति पद्धति का मेरुदण्ड पुष्टिमार्गीय भक्ति है। भगवान् की भक्त पर कृपा नाम ही पोषण है 'पोषणं तदनुग्रहः'। पोषण के भाव को स्पष्ट करने के लिए भक्ति के दो रूप बताये गये हैं ङ्क साधन रूप और साध्य रूप। साधन भक्ति में भक्त को प्रयत्न करना होता है, किन्तु साध्य रूप में भक्त सब कुछ विसर्जित करके भगवान् की शरण में अपने को छोड़ देता है। पुष्टिमार्गीय भक्ति को अपनाने के बाद प्रभु स्वयं अपने भक्त का ध्यान रखते हैं, भक्त तो अनुग्रह पर भरोसा करके शान्त बैठ जाता है। इस मार्ग में भगवान् के अनुग्रह पर ही सर्वाधिक बल दिया जाता है। भगवान् का अनुग्रह ही भक्त का कल्याण करके उसे इस लोक से मुक्त करने में सफल होता है -

जा पर दीनानाथ ढरै।

सोइ कुलीन बड़ौ सुन्दर सोइ जा पर कृपा करै।

सूर पतित तरि जाय तनिक में जो प्रभु नेक ढरै।।[12]

बच्चे का तुतलाना माता-पिता के हृदय को गद्गद् कर देता है। बालकृष्ण आँगन में खेलते हुए तुतलाते जाते हैं। उसे देखकर नन्द यशोदा बलि जाते हैं -

बाल विनोद आँगन की डोलनि।

मनिमय भूमि नन्दकै आलय , बलि बलि जाऊँ तोतरे बोलनि। [13]

इस प्रकार सूरदास ने अपने भक्ति के प्रसंग में अपने आराध्य को बालरूप में चित्रित किया है। इस बाल-चित्रण में वात्सल्य-रस के सभी अंगों का सशक्त चित्रण मिलता है। सूरदास ने आश्रय के रूप में नन्द, यशोदा, गोपी, भाई आदि रखे हैं। सूरदास का बालचित्रण विस्तृत होने के कारण अधिक व्यापक और विविधतापूर्ण है।

सन्दर्भ

1 हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठसंख्या - 67, राजस्थान राज्य पाठ्य पुस्तक मण्डल, जयपुर, 2016

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास - 1929

3 सूर एवं तुलसी का बाल चित्रण, पृ.सं.169,डॉ. अवन्तिका कुलकर्णी, साहित्यागार, जयपुर, 1990

4 साहित्यकोश भाग - 1

5 आचार्य शुक्ल।

6 आचार्य द्विवेदी।

7 सूरसागर, पृष्ठ संख्या -13, सम्पादक - डॉ. व्रजेश्वर वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्र.सं.1988

8 सूरसागर, पद्य-93, पृष्ठ संख्या -25, सम्पादक - डॉ. व्रजेश्वर वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्र.सं.1988

9 सूरसागर, पद्य-188, पृष्ठ संख्या -45, सम्पादक-डॉ. व्रजेश्वर वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्र.सं.1988

10 सूरसागर, पद्य-153, पृष्ठ संख्या -38, सम्पादक - डॉ. व्रजेश्वर वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्र.सं.1988

सूरसागर, पद्य-300, पृष्ठ संख्या -68, सम्पादक - डॉ. व्रजेश्वर वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्र.सं.1988

हिन्दी साहित्य का इतिहास - सगुण भक्तिकाव्य, पृ.सं.203, डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, 33वाँ संस्करण - 2007

सूरसागर, दशम स्कन्ध 121